कर्म योग

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है– योगःकर्मसु कौशलम् अर्थात् कर्म में कुशलता ही योग है। कर्म में कुशलता का अर्थ है कि कर्म को कर्त्तव्य भावना से किया जाना चाहिए। जन्म लेने वाले हर प्राणी को जीवन में कर्म करना ही पड़ता है। मानव, दानव, प्रकृति, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे सभी अपने कर्मों को करते हैं। वृक्ष हमें प्राणवायु देते हैं। शुद्ध वायु, छाया, फल और अन्य चीजें वृक्ष हमें प्रदान करते हैं। यह वृक्ष का कार्य है। जिसको की वे करते रहते हैं। प्रकृति भी सदैव कर्म करती रहती है। नदी, पहाड़, झरने, प्रवाहित होते रहते है। प्रकृति के सभी तत्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति अपने–अपने कार्यों में लगे रहते हैं। यह सम्पर्णू सृष्टि जड़ और चेतन इन दो तत्वों पर आधारित है। दोनों तत्व स्वतंत्र रहते हुए भी एकसाथ कार्य करते हैं।

कर्म तब कर्मयोग बन जाता है, जब अभिमान रहित होकर उसे किया जाता है। सुख–शांति कर्म करने से ही प्राप्त होती है। वांछित फल कभी–कभी नहीं प्राप्त होता तो उसे दुःख होता है। इसलिए फल की भावना से रहित होकर कर्म करना चाहिए। पशु–पक्षी, जीव–जन्तु प्रकृति के साथ जीवन–यापन करते हैं। वे प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं। मनुष्य प्रकृति से अप्राकृत होता जा रहा है। ऋतुओं का परिवर्तन, प्रकृति में परिवर्तन समय–समय पर होता रहता है। प्राकृतिक जीव प्रकृति के साथ अनुकूलन कर लेते हैं। मनुष्य प्रकृति के साथ तादात्म्य नहीं बैठा पाता। इसलिए प्रकृति में परिवर्तन के साथ वह अप्राकृतिक कार्य करने लगता है।

गर्मी के समय में एयरकंडिशन का उपयोग, सर्दी के समय हीटर का उपयोग करता है। ऐसा करके वह प्रकृति से छेड़छाड़ करके अप्राकृतिक कार्य करता है। कर्मयोग कहता है कि उतना ही करो जितना आवश्यक है। यदि अनुकूलता कम, प्रतिकूलता अधिक होगी तो योग भी

अयोग बन जायेगा। कर्मयोग कर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। जीवन की रक्षा के लिए, समाज की रक्षा के लिए, देश की रक्षा के लिए जो कर्म किया जाता हैं वह कर्मयोग है। दुःखों की उत्पत्ति ही कर्म से ही होती है। सारे दुःख और कष्ट आसक्ति से उत्पन्न होते हैं। कर्मयोग यह शिक्षा देता है कि कर्म के लिए कर्म करो। अनासक्ति भाव से कर्म करो। कर्मयोगी कर्म का त्याग नहीं करता, केवल कर्मफल का त्याग करता है और कर्मजनित दुःखों से मुक्त हो जाता है। उसकी स्थिति इस संसार में एक दाता के समान है और वह कुछ पाने की कभी चिंता भी नहीं करता। वह जानता है कि वह दे रहा है और बदले में कुछ मांगता नहीं। इसलिए वह दुःख के चंगुल में नहीं पड़ता।

गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग है। सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, संयोग–वियोग को जो समान भाव से धारण करता है वह समत्व योग में रहता है। संसार का कोई कार्य ईश्वर से अलग नहीं है। इसलिए कार्य की प्रकृति कोई भी हो, निष्काम कर्म सदैव ईश्वर को ही समर्पित हो जाता है। पुनर्जन्म का कारण वासनाओं या अतृप्त कामनाओं का संचय है। कर्मयोगी कर्मफल के चक्कर में नहीं पड़ता, अतः वासनाओं का संचय भी नहीं होता। कर्मयोगी पुनर्जन्म के बंधन से भी मुक्त हो जाता है। भारतीय दर्शन में कर्म को बंधन का कारण माना गया है। किन्तु कर्मयोग में कर्म के उस स्वरूप का निरूपण किया गया है जो बंधन का कारण नहीं होता। कर्म इस प्रकार करना चाहिए की वह बंधन ही न उत्पन्न करें। प्रसन्न यह है कि कौनसा कर्म बंधन उत्पन्न करता है और कौनसा नहीं? गीता में कहा गया है कि जो कर्म निष्काम भाव से ईश्वर के लिए किया जाता है वह कर्म बंधन उत्पन्न नहीं करता। वह कर्म मोक्षरूप परमपद की प्राप्ति में सहायक होता है। इस प्रकार ईश्वर के लिए कर्म करना वास्तविक रूप से कर्मयोग है। इसका अनुसरण करने से मनुष्य को अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है।

कर्मों से संन्यास लेने अथवा उनका परित्याग करने की अपेक्षा कर्मयोग अधिक श्रेयस्कर है। कर्मों का परित्याग कर देने से मनुष्य परमपद को नही प्राप्त कर सकता। मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रहता। सभी अज्ञानी जीव प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज और तम, इन तीनों गुणों से नियंत्रित होकर कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। मनुष्य यदि बाह्य दृष्टि से कर्म न भी करें और

विषयों में लिप्त न हो तो भी वह मन से उसका चिंतन करता है। इस प्रकार का मनुष्य मूढ़ और मिथ्या आचरण करने वाला कहा गया है। कर्म करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है। बिना कर्म किए शरीर का निर्वाह भी संभव नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि तीनों लोकों में उनका कोई भी कर्त्तव्य नहीं है, कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त करनी नहीं है। फिर भी वे कर्म में संलग्न रहते हैं। यदि वे कर्म न करें तो मनुष्य भी उनके चलाये हुए मार्ग का अनुसरण करने से निष्क्रिय हो जायेंगें। इससे लोक स्थिति के लिए किये जाने वाले कर्मों का अभाव हो जायेगा, जिससे संपूर्ण प्रजा नष्ट हो जायेगी। इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य को भी, जो प्रकृति के बंधन से मुक्त हो चुका है, सदा कर्म करते रहना चाहिए। अज्ञानी मनुष्य फल प्राप्ति की आकांक्षा से कर्म करता है लेकिन आत्मज्ञानी लोक संग्रह के लिए कर्म करता है। इसलिए वह कर्मयोगी कहलाता है।